Indian J. Soc. & Pol. 05(I):2018:103-106 Special Issue **ISSN : 2348-0084(PRINT)**
UGC List No. 47956 **ISSN: 2455-2127(ONLINE)**

वर्तमान परिदृश्य में वैवाहिक परम्पराओं का बदलता स्वरूप–एक समाजशास्त्री विवेचन

संदीपा विश्वकर्मा[1a]
[a]शोध छात्रा,समाजशास्त्र विभाग,छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर, उ0प्र0,भारत

ABSTRACT

विवाह रूपी संस्था किसी न किसी रूप में विश्व के सभी समाजों में पायी जाती है। विवाह दो विषम लिंगियो को यौन क्रिया और उससे सम्बन्धित सामाजिक – आर्थिक सम्बन्धों में सम्मिलित होने का अधिकार प्रदान करती है। समाज की परिवर्तनशील प्रकृति के कारण विवाह संस्था जो समाज का ही एक घटक है, में परिवर्तन की प्रक्रिया अछूती नहीं है। समय और परिस्थितियों में परिवर्तन के साथ–साथ विवाह संस्था में भी परिवर्तन देखे जा सकते है। वर्तमान समय में शिक्षा के प्रचार–प्रसार तथा पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के परिणामस्वरूप विवाह की संस्था में अनेक परिवर्तन देखने को मिल रहे है। प्रस्तुत शोध पत्र में वर्तमान समय में वैवाहिक परम्पराओं के बदलते स्वरूप को प्रस्तुत किया गया है।

KEYWORDS: *यौन क्रिया, चमत्कारिक क्रान्ति, उद्वह, विषमलिंगी, अभिप्रेरणाएं, समयुग्मी विवाह, लिव–इन–रिलेशनशिप, प्राग्वैवाहिक सतीत्व।*

प्रस्तावना

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। क्रिया और परिवर्तन सदैव उपस्थित रहने वाले सार्वभौमिक तथ्य हैं। मानवीय जीवन भी इसी परिवर्तन का नाम है। विश्व में ऐसा कोई मानव समाज नहीं है जिसमें परिवर्तन नहीं होता हो। समाज में अक्सर नयी पीढ़ियाँ अपनी प्रथाओं और परम्पराओं को वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अपर्याप्त समझती है। इस प्रकार कुछ नये सामाजिक मूल्यों का विकास होता है। धर्म और नैतिकता की अवस्थाओं में भी परिवर्तन होने से व्यक्तियों के विश्वासों, मनोवृत्तियों और मूल्यों में तेजी से परिवर्तन होने लगता है। सबसे अधिक परिवर्तन सामाजिक संस्थाओं में परिवर्तन से होता है क्योंकि संस्थाएँ ही सामाजिक जीवन को नियंत्रित करती है। आज विश्व में हर क्षेत्र में, चाहे वह सामाजिक हो, आर्थिक हो या सांस्कृतिक हो, क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे है। समाज की एक प्रमुख संस्था विवाह भी इन परिवर्तनों से अछूती नहीं रही है। विवाह को संस्था इसलिये कहा गया है क्योंकि इसकी संरचना के मूल में कुछ निश्चित नियम और कार्य प्रणाली होती है।

सामाजिक परिवर्तन लाने में औद्योगीकरण, नगरीकरण, शिक्षा, यातायात तथा संचार के क्षेत्र में हुयी चमत्कारिक क्रान्ति तथा व्यक्तिवादी जीवन दर्शन का प्रमुख योगदान रहा है। वैश्वीकरण, पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति तथा संचार के साधनों के प्रभाव से लोगों की मानसिकता में बहुत तेजी से बदलाव आया है। L.W. Pye ने लिखा है "The structure of communication system with its more or less well defined channels is in a sense the skeleton of the social body which envelops it" इन विभिन्न साधनों ने विवाह रूपी संस्था को बहुत तेजी से प्रभावित किया है।

विवाह की अवधारणा

मनुष्य की जैवकीय और विशेष रूप से यौन आवश्यकताओं को पूरा करने वाली विधि तथा प्रथा विवाह संस्था है। सभी संस्कृतियों में संस्थागत यौन तृप्ति और प्रजनन की मान्य पद्धति विवाह की है। विवाह का शाब्दिक अर्थ है 'उद्वह' अर्थात् वधू को वर के घर ले जाना। अनेक समाजशास्त्रियों ने विवाह को निम्नानुसार परिभाषित किया है–

लूसी मेयर लिखते है–''विवाह की परिभाषा यह है कि विवाह स्त्री पुरूष का ऐसा योग है, जिससे स्त्री से जन्मा बच्चा माता–पिता की वैध सन्तान माना जायें।''

वेस्टरमार्क लिखते है–''विवाह एक या अधिक पुरूषों का एक या अधिक स्त्रियों के साथ होने वाला वह सम्बन्ध है जिसे प्रथा या कानून स्वीकार करता है और जिसमें इस संगठन में आने वाले दोनों पक्षों एवं उनसे उत्पन्न बच्चों के अधिकार एवं कर्तव्यों का समावेश होता है।''

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि विवाह विषमलिंगियों को पारिवारिक जीवन में प्रवेश करने की सामाजिक, आर्थिक तथा कानूनी स्वीकृति है। समाज के दीर्घकालीन अस्तित्व में विवाह की प्रकृति, संरचना तथा प्रकार्य में अनेक परिवर्तन हुये है। विभिन्न संस्कृतियों में विवाह के भिन्न– भिन्न स्वरूप पाये जाते है, किसी न किसी रूप में विवाह रूपी संस्था हर समाज में पायी जाती है। वैवाहिक परम्परायें एवं उत्सव विभिन्न समाजों की प्रथाओं एवं परम्पराओं के अनुसार अलग–अलग हो सकते है, किन्तु एक बात जो सभी समाजों एवं संस्कृतियों में समान है वह यह कि विवाह यौन आवश्यकताओं की पूर्ति, सन्तानोत्पत्ति और गृहस्थ जीवन बिताने के लिये आवश्यक है।

1: Corresponding Author

दो व्यक्तियों के वैवाहिक सम्बन्ध में बंधने के लिये समाज की अपनी पद्धति और रीति–रिवाज होते है। प्रायः सभी समुदायी में चाहे व हिन्दू हो, मुस्लिम हो, ईसाई या अन्य हो, विवाह और धार्मिक क्रियायें एक दूसरे से जुड़ी होती है। के0एम0 कपाड़िया के अनुसार–''हिन्दू विवाह एक धार्मिक संस्कार है।'' इस्लाम धर्म के अनुसार विवाह एक संविदा (आपसी समझौता) है। हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 के अनुसार अब विवाह स्त्री पुरूष के बीच एक कानूनी समझौता बन गया है।

विवाह में अभिप्रेरणाएं

वैवाहिक सम्बन्ध मुख्य तौर पर केवल दो विषम लिंगियों के बीच ही नहीं बल्कि दो परिवारों और उनसे सम्बन्धित अन्य सम्बन्धियों एवं स्थानों से भी परोक्ष या अपरोक्ष रूप से सम्बन्धों को जोड़ने का कार्य करते है। वैवाहिक सम्बन्ध सामाजिक सम्बन्धों को स्थापित करने या उन्हें बनाये रखने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। इन वैवाहिक सम्बन्धों के माध्यम से लोगों के विचारों, मान्यताओं और मूल्यों आदि का पता चलता है।

प्रारम्भिक काल में व्यक्ति विवाह इसलिये करता था क्योंकि जीवन–यापन की समस्या उसके सामने थी। आर्थिक कारणों से मनुष्य को बच्चों की आवश्यकता होती थी, जो न केवल उन्हें काम में मदद करें, बल्कि जब माता–पिता कार्य करने योग्य नहीं रहे तब बच्चे बीमें के समान उनके काम आ सकें। उन्हें खेतों पर काम करने के लिये अधिक स्त्रियों की आवश्यकता होती थी। इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रारम्भिक काल में विवाह में प्रेम तथा सहयोग नहीं था और केवल व्यावहारिक कारण ही अधिक महत्वपूर्ण थे।

आज जब 'परम्परागत' समाज 'आधुनिक' समाज में बदल रहा है, विवाह के लिये इन व्यावहारिक कारणों का महत्व कम होता जा रहा है। आज विवाह के जो प्रेरक कारक माने जा रहे है वे है एकाकीपन की भावना से छुटकारा तथा दूसरों के माध्यम से जीवित रहने का उद्देश्य। इस प्रकार आज विवाह का प्रमुख उद्देश्य मित्रता या सहयोग प्राप्ति है। यौन सन्तुष्टि इसके क्षेत्र से परे नहीं है परन्तु यह अब मित्रता की अपेक्षा गौण हो गया है।

आधुनिक समाज में विवाह के बदलते स्वरूप

आजकल आधुनिक समाजों में विवाह के इस पारम्परिक दृष्टिकोण को आधुनिक युवाओं द्वारा स्वीकार किये जाने में झिंझक होने लगी है। वे अब अविवाहित रहते हुये भी 'विवाहित के रूप में साथ–साथ रहने' में विश्वास करने लगे हैं। पश्चिमी समाजों में अब धीरे–धीरे विवाह का रूप मात्र 'सुविधात्मक सम्बन्ध' (अरेंजमेंट) अथवा 'समझ पर आन्तरिक सम्बन्ध' अर्थात् मात्र ''समझौता'' बनते जा रहे है। सुविधात्मक सम्बन्ध समझने वाले जोड़ी में बेतहासा वृद्धि होने लगी है। भारत के महानगरों (मुम्बई, दिल्ली, कोलकाता आदि) में भी इस प्रवृत्ति का प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगा है।

एक सामाजिक संस्था के रूप में विवाह और परिवार की प्रकृति, आकार– प्रकार और उद्देश्यों में तीव्र गति से परिवर्तन आ रहा है। विवाह पूर्व तथा विवाह के अतिरिक्त सहवास, सहवासहीन विवाह, विवाह रहित सन्तानोत्पत्ति और लालन–पालन, उच्च तलाक की दरें जैसी बढ़ती हुयी घटनाओं ने विवाह की पारम्परिक परिभाषा पर नये सिरे से सोच–विचार की पृष्ठभूमि तैयार कर दी है। आधुनिक परिस्थितियों के कारण विवाह और परिवार का पारम्परिक दृष्टिकोण, अर्थात् विवाह दो विषमलिंगियों को दाम्पत्तिक अधिकार एवं कर्तव्यों में आबद्ध कर उन्हें सहवास और सन्तानोत्पादन की स्वीकृति देता है, धुंधलाता जा रहा है। कुछ व्यक्ति तो विवाह के भविष्य के बारे में निराशावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करने लगे है।

अमेरिका और ब्रिटेन में अभी हाल में विवाह के बारे में जो समाजशास्त्रीय शोध हुये है वे इस बढ़ते हुये भय की पुष्टि करते है कि एक संस्था के रूप में विवाह में क्षीणता आ रही है। इस भय के दो प्रमुख स्रोत है–प्रथम इन देशों में दिन–प्रतिदिन वैवाहिक सम्बन्ध टूटते जा रहे है, जिसके कारण तलाक की संख्या बढ़ती जा रही है, द्वितीय विवाह की संस्था को अब वह तबज्जोह नहीं दिया जाता जो पहले दिया जाता था। धीरे–धीरे यह संस्था फैशन के चलन के बाहर होती जा रही है। अब अधिकाधिक व्यक्ति वैवाहिक सम्बन्धों के बाहर सहवास करने लगे है। यही नहीं, वे अपने बालकों का पालन–पोषण भी इसके बाहर करने लगे है। आजकल बहुत से व्यक्ति तो विवाह के बन्धन में पड़ना पसंद नहीं करते, यद्यपि वे विवाहित जोड़े की भाँति साथ–साथ रहते हैं। इन हालातों को देखते हुये विवाह का भविष्य अंधकारमय नजर आता है, फिर भी वहाँ की अधिकांश वयस्क जनसंख्या विवाह को जीवन के जीने का सही तौर–तरीका मानती है। वे व्यक्ति, जिनका पहला वैवाहिक सम्बन्ध किसी कारण से टूट चुका है, वे अभी भी दूसरी बार विवाह करने के इच्छुक और आशान्वित हैं। प्रतिदिन टूटते हुये वैवाहिक सम्बन्धों के कारण अब इन देशों में समयुग्मी विवाहों (समान सामाजिक–आर्थिक– शैक्षिक पृष्ठभूमि वालों के बीच विवाह) विवाह की प्रवृत्ति बढ़ने लगी है। अध्ययनों से विदित हुआ है कि ऐसे वैवाहिक सम्बन्ध अधिक टूटते है जहाँ पति–पत्नी दोनों कमाते है या पत्नी की आय पति से अधिक होती है। क्या पत्नी के रोजगरित होने के कारण वैवाहिक सम्बन्धों में समता आई है, यह प्रश्न अभी अनुत्तरित है। किन्तु, पारम्परिक पारिवारिक श्रम विभाजन में अवश्य थोड़ा अन्तर आया है। अब पुरूष भी घरेलू कार्यों में थोड़ा बहुत हाथ बँटाने लगे है।

युवा पीढ़ी का विवाह के प्रति बदलता दृष्टिकोण

विवाह हेतु वर एवं वधू दो प्रमुख पक्ष होते है जिनका चयन करना होता है। पूर्व में परिवार के बड़े–बुजुर्ग स्वयं अपने सगे–सम्बन्धियों एवं मित्रों की सहायता से अपने पुत्र–पुत्रियों के लिये जीवन साथी का चयन करते थे। वे स्वयं जाकर ही लड़के व लड़की के परिवार की पृष्ठभूमि, आर्थिक स्थिति, समाज में प्रतिष्ठता, दहेज, जाति, जन्म कुण्डली इत्यादि के आधार पर रिश्ता तय करते थे। युवक तथा युवतियों से इस बारे में कोई सहमति नहीं ली जाती थी। उस समय वर–वधू को किसी भी प्रकार से अपना जीवन साथी चुनने की कोई स्वतंत्रता नहीं थी। यह विवाह दो व्यक्तियों में न होकर दो परिवारों में होता था। वैदिक काल में अवश्य स्वंयवरों के माध्यम से जीवन साथी चयन के प्रमाण मिलते हैं। सिर्फ भारत में ही नहीं,

विश्व के अधिकतर प्राचीन समाजों में युवक–युवतियों पर जीवन साथी चयन के मामले में परिवार के बड़े–बुजुर्गों का नियंत्रण रहता था। जापान, कोरिया और फिलीपीन्स में भी जीवन साथी का चयन परिवार के सदस्यों द्वारा होता था। जब तक सारी बातें तय नहीं हो जाती थी तब तक वर–वधू को एक–दूसरे को देखने की इजाजत भी नहीं थी। ठीक यही स्थिति चीन और जापान के उच्च वर्ग में पायी जाती थी।

वर्तमान समय में भारतीय विवाह संस्था उस दो राहे पर खड़ी है जहाँ एक ओर तो शिक्षित युवक–युवतियाँ विवाह के प्रति अपना दृष्टिकोण बदलने में यकीन रखते है, वही दूसरी ओर एक ऐसा वर्ग है जो विवाह के प्रति अपने परम्परावादी विचारों से सन्तुष्ट है। अतः विवाह के प्रति उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन हो रहा है। पिछले कुछ वर्षों में वैश्वीकरण, आधुनिकीकरण, पश्चिमीकरण, औद्योगीकरण, नगरीकरण, पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति तथा सहशिक्षा ने भारतीय विवाह संस्था को प्रभावित किया है। आजकल तो कम्प्यूटर के बढ़ते प्रभाव, इन्टरनेट एवं सोशल साइट्स ने भी विवाह संस्था को प्रभावित किया है। William J. Goode -It seems to be functioning like market system.

वर्तमान समय में विवाह की अनिवार्यता धीरे–धीरे कम होती जा रही है। आज युवक–युवतियाँ विवाह को अपनी स्वतंत्रता पर आघात मानने लगे है। युवक–युवतियों के उच्च शिक्षा प्राप्त करने, आर्थिक दृष्टि से अपने पैरों पर खड़ा होने तथा जनसंख्या को सीमित रखने के कारण विवाह की अनिवार्यता पर उतना जोर नहीं दिया जाता है, जितना पहले दिया जाता था। आज के युवजन विवाह के पहले कैरियर बनाना अति आवश्यक मानते है। आज समाज में एक नया स्वरूप भी दिखायी पड़ रहा है वह है 'लिव–इन–रिलेशनशिप' अर्थात् बिना विवाह के साथ–साथ रहना। आजकल युवक–युवतियाँ जाति–पाति तथा धार्मिक बन्धनों की चिन्ता नहीं करते हुये स्वयं या अपने मनपसंद जीवनसाथी से विवाह करना चाहते है। जहाँ परिवार, जाति तथा समाज के लोग इसमें बाधक बनते है। जिससे दो पीढ़ियों में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। सहशिक्षा तथा युवक–युवतियों के विविध क्षेत्रों में साथ–साथ काम करने से रोमांस पर आधारित प्रेम विवाहों का महत्व बढ़ता जा रहा है। जहाँ प्राचीन समाज में विवाह को एक धार्मिक संस्कार माना जाता था परन्तु आज विवाह सामाजिक समझौता बन कर रह गया है। पत्नी–पति को परमेश्वर न मानकर एक मित्र व सहयोगी समझने लगी है। जिसके कारण विवाह विच्छेद एवं तलाक संख्या दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। जिससे पारिवारिक विघटन की समस्या भी बढ़ती जा रही है। इस प्रकार भारत में विवाह संस्था पश्चिम के आदर्शों व मूल्यों के अनुरूप परिवर्तित हुयी है।

निष्कर्ष एवं सुझाव

वर्तमान समय में विवाह के परम्परागत स्वरूपों में कई कारणों से बड़े परिवर्तन हुये है। विवाह को धार्मिक बन्धन के स्थान पर कानूनी बंधन तथा पति–पत्नी का निजी मामला मानने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। औद्योगिक क्रान्ति तथा शिक्षा के प्रसार से युवा पीढ़ी आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बन रही है। पहले उनके सुखमय जीवनयापन का एकमात्र साधन विवाह था, अब ऐसी स्थिति नहीं रही। विवाह तथा तलाक के नवीन कानून दाम्पत्य अधिकारों में नर–नारी के अधिकारों को समान बना रहें है। धर्म के प्रति आस्था में शिथिलता तथा गर्भ निरोध के साधनों के आविष्कार ने विवाह विषयक पुरानी मान्यताओं का, प्राग्वैवाहिक सतीत्व और पवित्रता को गहरा धक्का पहुँचाया है। किन्तु ये सब परिवर्तन होते हुये भी भविष्य में विवाह प्रथा के बने रहे का प्रबल कारण यह है कि इससे कुछ ऐसे प्रयोजन पूरे होते है, जो किसी अन्य साधन या संस्था से नहीं हो सकते। पहला प्रयोजन वंशवृद्धि का है। यद्यपि विज्ञान ने कृत्रिम गर्भाधान का आविष्कार किया है किन्तु कृत्रिम रूप से शिशुओं का प्रयोगशालाओं में उत्पादन एवं विकास सम्भव प्रतीत नहीं होता। दूसरा प्रयोजन सन्तान का पालन है, राज्य और समाज शिशु शालाओं तथा बालोद्यानों का कितना ही विकास कर ले, उनमें उनके सर्वांगीण समुचित विकास की वैसी व्यवस्था सम्भव नहीं, जैसी विवाह एवं परिवार की संस्था में होती है। तीसरा प्रयोजन सच्चे दाम्पत्य प्रेम और सुख प्राप्ति का है। यह भी विवाह के अतिरिक्त किसी अन्य साधन से सम्भव नहीं। इन प्रयोजनों की पूर्ति के लिये भविष्य में विवाह एक महत्वपूर्ण संस्था बनी रहेगी, भले ही उसमें कुछ न कुछ परिवर्तन होते रहें।

अतः वर्तमान परिदृश्य में विवाह प्रणाली के सम्बन्ध में समाज की सोच नकारात्मक न होकर सकारात्मक होनी चाहिये जिससे विवाह को सफल बनाया जा सकें। भारत के प्रत्येक प्रगतिवादी नागरिकों को और राष्ट्र के शुभचिन्तकों को बदलती विवाह प्रणाली को प्रोत्साहित करके सामाजिक समरूपता को उत्पन्न करना होगा।

REFERENCES

कपाड़िया, के0एम0 (1963) *''भारत में विवाह एवं परिवार''*, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, पृ0 174

मेयर, लूसी *''सामाजिक नृ–विज्ञान की भूमिका''*, पृ0 90

मनुस्मृति 3 / 20

Goode William, J. (1965). "*The Family*", New Delhi, P. 32.

Hatte, C.A. (1946). "*The Social Position of Hindu Women*", P. 39.

https://hi.m.wikipedia.org>wiki>विवाह

रावत, हरिकृष्ण (2015), *''उच्चतर समाजशास्त्र विश्वकोश''*, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृ0 283

समाजशास्त्र एक परिचय, राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद,पृ0 171

Pye, L.W. (1963). "*Communication and Political Development"*, New Jersey : Princeton University Press, P. 4.

आहूजा, राम (2013) ''*भारतीय सामाजिक व्यवस्था*'', रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृ0 107

Westermark, E. (1921). "*History of Human Marriage*", London : Macmillian, P. 153